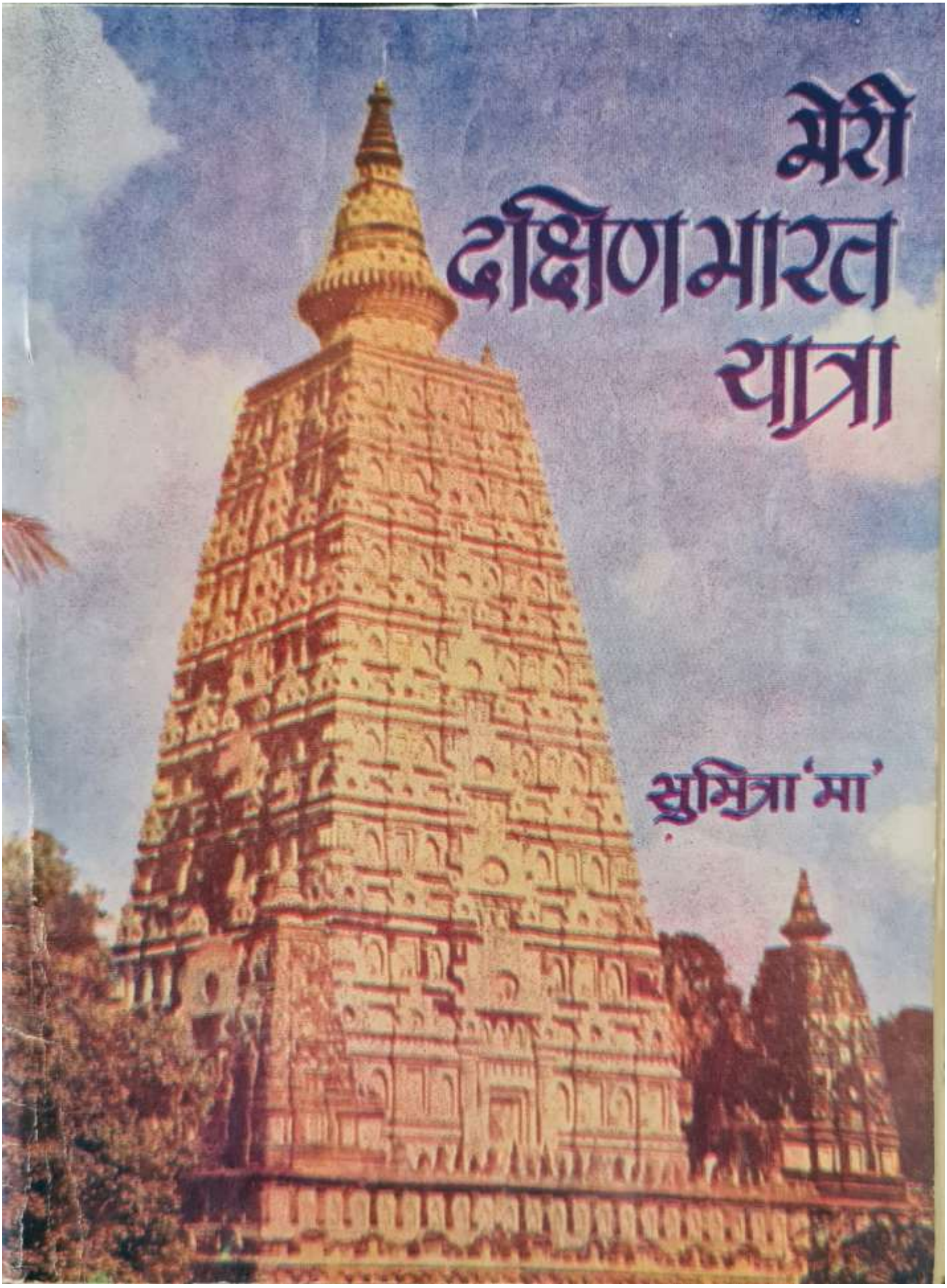
मेरी
दक्षिणभारत
यात्रा
सुमित्रा 'मा'

मेरी दक्षिण-भारत यात्रा

लेखिका
सुमित्रा 'मां'

मिलने का पता
मैनेजर साधना धाम
कनखल (हरिद्वार)।

सन् १९७३]

मूल्य १·२५ पैसे

सुमित्रा (माँ)

मेरी दक्षिण भारत यात्रा

'माली सींचे सौ घड़ा– ऋतु आये फल होय'

इसके पाँच वर्ष पहले जब हम लोग बद्रीनारायण धाम की यात्रा को गये थे, तभी से दक्षिण–भारत की यात्रा का संकल्प भीतर ही भीतर चल रहा था। गत वर्ष भी चलते–चलते किसी विशेष कारणवश रुक गये थे। इस वर्ष के प्रारम्भ से ही ठाकुर से याचना शुरु हुई। अन्ततोगत्वा वह दिन आ ही गया। चलने का दिन निश्चित हो गया। हम सब मिलकर दस भाई बहिन थे। 2 नवम्बर सन् 1972 का दिन चलने के लिए नियत हुआ और प्रभु कृपा से वह घड़ी आ पहुंची। सायंकाल जी0टी0 एक्सप्रेस से सीटें आरक्षित कर ली गईं और हम सब सीधे मद्रास के लिए चल पड़े।

स्टेशन पर विदाई देने वाले भाई–बहिनों की काफी भीड़ हो गई थी। लोग कुछ न कुछ डिब्बों और लिफाफों में लिए हुए थे। सीट के एक कोने पर इस खाद्य सामग्री का ढेर सा लग गया था। कई लोगों की आंखों में आंसू झलक रहे थे। जो साथ चलते वह गृहस्थी की उलझनों के कारण जाने से रुक गये थे। अचानक सीटी बजी और सब को वहीं छोड़कर गाड़ी आगे बढ़ी। वह गये, वह गये, पीछे रूमाल हिलते रहे, हाथ संकेत करते रहे और हम रेलवे प्लेटफार्म से बाहर निकल गये।

तीसरे दर्जे का डिब्बा था। यद्यपि स्थान बहुत तंग था किन्तु दिलों में जगह हो तो जगह बन ही जाती है। हँसते–खेलते बड़े प्यार से खाते–पीते, कुछ सोते कुछ जागते, रात कट गई और सूर्य भगवान ने आँखें खोलीं। सवेरा हुआ। एक तिहाई सफर ही तय हुआ था कि मौसम गरम लगने लगा। धीरे–धीरे कपड़े उतरने लगे।

सामान साथ में पर्याप्त था। हम आनन्द से खाते–पीते तीसरे दिन प्रातः लगभग ग्यारह बजे मद्रास रेलवे स्टेशन पर आ गये। प्रान्त भेद से ऋतु के तापमान में काफी अन्तर था। उतरते ही पसीना आना शुरू हुआ। एक तो तपन, दूसरे लोगों की बोलचाल में भारी भेद, ऊपर से तीन दिन के सफर की थकान, सब मिलाकर परेशानी सी लगने लगी। किन्तु एक सज्जन उदार दिल, स्नेही, मधुर भाषी जिनको पहले ही सूचना दे रखी थी, जल्दी ही स्टेशन पर दिखाई पड़ गये, जैसे किसी अनजान देश में अपना सगा सम्बन्धी मिल गया हो। था भी सत्य ही, श्री एन0 सी0 आहूजा जी, जो पति–पत्नी हमारी यात्रा के साथी थे, यह उनके बहनोई हैं मिस्टर मलिक। वर्षों से यहाँ अपने बिजनेस के संदर्भ में रहते हैं। बड़े हँसमुख, उदार हृदय व्यक्ति हैं। इन्होंने ही हमारे ठहरने के लिए मद्रास में कल्याण–मण्डप नामक एक भव्य भवन में सुविधाजनक स्थान का प्रबन्ध कर रखा था। पहले दिन हम इनके ही अतिथि बन कर रहे। भोजन इन्ही के घर खाया। बाकी तीन दिन वहीं रहे, पर भोजन अपना ही बनता रहा।

पाँच तारीख को हमारा पक्षी–तीर्थ जाने का तथा महाबलीपुरम् देखने का नियत हो गया। प्रातः 7:30 बजे टूरिस्ट बस में हम सब चल दिये। मद्रास का मुख्य मन्दिर तथा सी–बीच तो हम चार की शाम को ही देख आये थे। मद्रास से हम कांचीपुरम् पहुँचे। वहाँ कांची मन्दिर के दर्शन करके हम पक्षी–तीर्थ पहुँचे। मार्ग बड़ा सुहावना था, चारों ओर सस्यशामला भूमि, धानों के विशाल खेत, जैसे हरे गलीचे बिछे हों। हल्की बूंदाबांदी हो रही थी, बड़ा मनोरम समय था। हम पक्षी–तीर्थ पहुँचे। यह मन्दिर बहुत ऊपर नीलगिरि

शृंग पर स्थित है। 500 पैड़ी चढ़कर हम ऊपर पहुँचते हैं। हम में से कुछ लोग पैड़ियों के भय से नीचे ही रहे, कुछ ऊपर चढ़ने लगे।

इस मन्दिर के लिए एक ऐसी गाथा प्रसिद्ध है कि दो अमरात्मायें प्रातः वाराणसी स्थित विश्वनाथ मन्दिर के दर्शन करके वाराणसी से पक्षी रूप में उड़ती हुई लगभग ग्यारह बजे पक्षी–तीर्थ पहुँचती हैं। जैसा पुरातन काल से नियम चला आ रहा है, इस शैव्य मन्दिर, जो उस गिरि शृंग पर है, उसका पुजारी उन पक्षियों के लिए यथा नियत भोजन बना कर तैयार रखता है और समय पर अपने हाथ की हथेली पर वह भोजन रख लेता है। वह पक्षी आते हैं सीधे हाथ पर बैठ जाते हैं और भोजन करके आगे को उड़ जाते हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि वह दोनों अमरात्मायें विश्वनाथ ठाकुर के दर्शन करके वहाँ से उड़ती हैं। मार्ग में इस गिरि शृंग पर विश्रामार्थ उतर कर भोजन करके सीधे रामेश्वर धाम को जाती हैं। वहाँ शिवलिंग के दर्शन करके वापिस रातों–रात फिर वाराणसी पहुँच जाती हैं। इसीलिए इस स्थान का नाम पक्षी–तीर्थ है। यह क्रम न जाने कब से चला आ रहा है। इन अमरात्माओं के दर्शन पाने के लिए श्रद्धालु भक्त सैंकड़ों की संख्या में प्रतिदिन दूर–दूर से आते हैं और गिरते–पड़ते वह पाँच सौ पैड़ी चढ़कर ग्यारह बजे तक ऊपर पहुँच जाते हैं, केवल इन पक्षियों के दर्शनार्थ, अन्यथा वहाँ जो शैव्य मन्दिर है वह तो न के बराबर है। एक बहुत पुरातन खण्डित मूर्ति केवल ब्राह्मणों के धन कमाने का एक अवलम्बन है, लोग कुछ न कुछ चढ़ा ही आते हैं।

हम भी गिरते पड़ते ऊपर पहुँचे, पर दुर्भाग्यवश पक्षियों के दर्शन न हो सके। पता चला कि दस दिन से वह पक्षी अब इधर नहीं आते। निराश सैकड़ों व्यक्ति नीचे उतर आये। यह सब कहाँ तक सत्य है भगवान ही जानें। हमें आज ही महाबलीपुरम् पहुँचना था, टूरिस्ट बस थी। कुछ जलपान कर आगे बढ़े।

महाबलीपुरम् सागर तट पर स्थित है। पुराने खण्डहर, टूटी प्रस्तर मूर्तियां अपनी मूक वाणी में पुरातन कथा कह रही हैं। वहाँ के लोग अनेक गाथायें इन आकारों के साथ जोड़े हैं, वह सुनाते हैं लोग सुनते हैं। पुरातन शिल्प कला का नमूना बहुत प्रशंसनीय है। वहाँ पर ही पर्यटक बस वालों का एक रेस्टोरेन्ट है। वहीं बस ले गई और भोजनादि वहीं किया। लौटते में कई एक स्थानों पर प्रस्तर मूर्तियाँ भी देखीं। सागर तट बड़ा रमणीक था। देखते–देखते सायं तक हम निज स्थान पर पहुँच गये। जैसे पक्षी दिन भर घूम कर रात को अपने घोंसले में औट आये। थकान बहुत हो गई थी, थोड़ी पेट पूजा की और सब ने निद्रा देवी की सुखदायिनी गोदी में विश्राम किया। आज तक हमने जितने मन्दिर देखे कहीं वह ऊँची बात नहीं लगी। तमिलनाडु में पूजा का अपना ही ढंग है। कहीं कीर्तन, भजन, कथा वार्ता का क्रम नहीं। इनकी अर्चना का ढंग भी अपना ही है। एक पतड़ी में बनी बनाई पूजा सामग्री नारियल, केला, सिन्दूर पुड़िया, पान, दो अगरबत्ती– सवा रुपये में हर जगह मिलता है। आप मन्दिर में ले जाकर पुजारी को दे देते हैं। वह देवता को दिखा कर नारियल तोड़ कर आप का वापिस दे देते हैं। बस यही है प्रसाद। धन तो जब भी जहाँ चढ़ाना हो चढ़ा सकते हैं। मुझे तो ऐसे लगा जैसे आत्मा रहित देह, देवता रहित मन्दिर, कहीं प्रकाश नहीं, अंधेरे मन्दिरों में तेल के छोटे–छोटे दीप और धुएं से भरे मन्दिर। अस्तुः

सात नवम्बर– आज हमें तिरुपति मन्दिर जाना था। प्रातः नाश्ता लेकर हम 2:30 बजे की बस से तिरुपति की ओर चल दिए। आज थोड़ा सामान भी साथ था, क्योंकि रात वहाँ काटनी थी। चलते गए–उस मार्ग

की मनमोहकता भी अवर्णनीय ही है। धान की लहलहाती हरी–भरी खेतियों के बिछे हुए गलीचे एक विशाल दृश्य आँखों के सामने मालिक की सुन्दरता को दिखाते है। स्थान–स्थान पर महिलायें कार्यरत है। कहीं नई पौध लग रही है तो कहीं क्यारी बन रही है, लगता है इधर खेती का सारा काम महिलाओं पर ही निर्भर करता है। यद्यपि रंग सांवला है किन्तु बड़ी सुडौल, उत्साही, कर्मठ लगती हैं। उनकी तुलना में पुरुष मूर्ख, निकम्मे, सुस्त, बड़े ढीले–ढाले कुरूप से नजर आते हैं। रास्ता बड़े आनन्द से कटा। मध्य मार्ग में बस एक स्थान पर रुकी। सब यात्रियों ने चाय पी, हमने भी पी। अब ज्यों–ज्यों हम आगे बढ़ते गये सायं होती गई।

लगभग छः बजे हम ठीक तिरुपति बस अड्डे पर जा लगे। अच्छी सुन्दर नगरी है, अच्छा बाजार है। खाने–पीने की सुविधा है। पिछले स्थानों की तुलना में लोग भी कुछ सभ्य लगते है। हमने एक चैन की सांस ली, समझा ठिकाने आ लगे। सब थके हुए थे। किन्तु ज्यों ही हमने सामान उतारा, मन्दिर की ओर बढ़ना चाहा तो पता चला कि यह तो तिरुपति नगरी है, आपको तो तिरुमलाई एक गिरि शृंग पर जाना है जहाँ मन्दिर स्थित है और वह स्थान यहाँ से 14 मील है। उसके लिए बस हमें दूसरे बस अड्डे से मिलेगी। एक कठिन समस्या सी लगी। वहाँ तक जाने के सिवा दूसरा चारा ही क्या था, जाना ही था, सामान भी था, सब मामान रिक्शा पर लाद सब पैदल चल दिए। जब वहाँ पहुँचे तो वहाँ की व्यवस्था ही भिन्न प्रकार की नजर आई। एक बड़ा सा लोहे की तारों का लम्बा पिंजड़ा सा बना था। टिकट घर के सामने जैसे वन पशुओं को कैद करने का साधन हो। लोहे की ऊँची–ऊँची सलाखों से खड़ा वह लोहे की मोटी जाली का पिंजड़ा जिसमें पुरुषों तथा महिलाओं की कतारें लगी हैं, टिकट के लिए। उस पिंजड़े के दोनों ओर द्वार हैं – एक घुसने का, दूसरा निकलने का। वह पिंजड़ा लोगों से जब भर जाता है तब ताला लग जाता है। वहीं बेंच बिछे हैं। वहाँ बैठकर आप आने वाली बस की प्रतीक्षा करते हैं। बस आती है, व्यक्ति एक–एक करके टिकट लेता है और बाहर निकल जाता है। जितनी सवारी लेनी हैं लेकर, उतनी जमा फिर करके दूसरी बस की प्रतीक्षा में ताला फिर लग जाता है। लोग कैदियों की भाँति पिंजड़े में फिर बैठ जाते हैं। दर्शनार्थियों की बेहद भीड़ रहती है। बसें आती रहती है। रात्रि सेवा की बसें चलती हैं, सम्भवतः सारी रात ही। हमारे लिए यह पहला ही अनुभव था। हमारे दो भाई उसी पिंजड़े में कैद हो गए। हँसते–हँसते पेट पिड़ाने लगे। उधर कुछ चिन्ता सी होने लगी, बादल छा गए, गहरी रात्रि होने लगी, अन्धेरा अनदेखा पहाड़ी रास्ता, वह भी 14 मील, पर जाना तो था ही, लाचारी थी। एकाएक बस आई और हमारे कैदी भाइयों की रिहाई का नम्बर आ गया। बाहर आए, धक्कामुक्की में सामान लादा, सीट ली और 'जय बाला जी की' कहते बस आगे बढ़ी। लगभग एक–तिहाई रास्ता कटा होगा कि पैदल जाने वालों का मार्ग दीखने लगा।

कैसा मनमोहक वह दृश्य था। गगनचुम्बी बिजली की ट्यूबलाइटों की कतारें, मध्य में पीतवर्ण बत्तियों का बना एक प्रवेश द्वार और द्वार के मस्तक पर बना रक्त बत्तियों का ललाट तिलक – अपनी पूर्ण सज्जा में सजा, वह प्रवेश द्वार एक अलौकिक छटा दे रहा था। श्रद्धालु भक्त जो पैदल यात्रा का पुण्य–कर्म कमाना चाहते हैं उसी रास्ते से आते हैं। पर वाहन से जाने वालों की भी गणना कम नहीं। बहुत बड़ी श्रद्धा विश्वास से ओत–प्रोत भक्तगण अपनी–अपनी आशाओं के दीपों को सँजोए चले जा रहे थे। हम भी एक वाहन से क्रमशः आगे बढ़ रहे थे। एकदम ऊँचा मोड़ आ गया। थोड़ी–थोड़ी ही दूरी पर मोड़ और सीधी

चढ़ाई। रात की अत्यन्त शीतल वायु के झोंके, हल्की–हल्की बूँदाबाँदी उसमें भी 14 मील का रास्ता तय करना। थोड़े निर्धारित समय में मन्दिर तक पहुँचकर उस बस की रात्रि सेवा के लिए शीघ्र लौटना है। बँधा हुआ समय है। बस चालक बड़ी तेजी से जा रहा है। मुसाफिरों के दिल दहल रहे हैं पर चालक तो अभ्यस्त है। निश्चिन्तता से तेजी से आगे बढ़ रहा है। चालक के हाथ विद्युत की गति से काम कर रहे हैं। हम ज्यों–ज्यों ऊपर चढ़ते गये शीतल वायु के झोंके असह्य होते गए। कितनी जानों का उत्तरदायित्व अपने कँधे पर रखे वह चालक राम भरोसे हवा की तेजी के साथ मार्ग काट रहा था। अन्त में नियत स्थान पर पहुँचकर बस रुक गई। बादल खूब घिर आए थे। बर्षा भी थोड़ी तेजी पकड़ गई थी। एक–एक करके बस खाली हो गई। वह बस चालक हमें वहाँ उतारकर, सामान नीचे रख तेजी से उसी रास्ते पर पीछे को वापस चला गया। देखते ही देखते आँखों से ओझल हो गया और हम एक शैड के नीचे आ गये। भाई लोग कुलियों की तलाश में थे।

यहाँ पहुँचते ही ऐसा लगा जैसे कई दिनों की भूख की तृप्ति का कुछ संबल मिला हो।

उतरते ही हरिनाम कीर्तन की ध्वनि कानों में पड़ी। एक ओर से लाउडस्पीकर पर सायं आरती का मधुर स्वर गूंज रहा था। ऊँचाई पर रामानुजाचार्य के ललाट चिन्ह वाला रक्त वर्ण मन्दिर का शिखर–चिन्ह नजर आ रहा था। बादलों की गरज में वह ध्वनि स्वर्ग का सा सुख उपजा रही थी। यह मेरी इस यात्रा में पहली प्रतीति थी कि हम किसी देव–स्थान पर हैं। पहाड़ी पर मन्दिर की परिधि में बसा वह पर्वतीय प्रदेश भूतल का एक स्वर्ग ही है, उस समय की ऐसी प्रतीति थी। चारों ओर बत्तियों की जगमगाहट थी। मेरे भीतर एक भाव तरंग चलने लगी। चारों ओर उस अन्धेरे में बिखरा–बिखरा ज्योतिर्मय कुछ भासित हो उठा। अन्तर्मुख होने के लिए मन मचल उठा। एक पूर्ण विभोर सी व्यवस्था लगने लगी। एकाएक किसी ने आवाज दी 'गरम चाय, कॉफी'। मन नीचे उतरा तो सामने कुली खड़े जल्दी–जल्दी सामान उठा रहे थे क्योंकि हमें नियत स्थान पर पहुँचना था। बर्षा बढ़ रही थी। सब भागे–भागे वहाँ पहुँचे।

यहाँ हमारे लिए मद्रास से ही श्री मलिक जी ने दो कमरों का एक छोटा सा घर रिजर्व करवा रखा था। नम्बर दफ्तर से हमें मिल गया था। मकान सुन्दर जगह पर था। सामान उतार कर कुलियों को विदा किया। किन्तु यह स्थान दस व्यक्तियों के शौचादि के लिए अपर्याप्त था। इस असुविधा के विषय में सोचते हुए आहूजा जी अधिकारी के पास गए और चार कमरों वाले एक मकान की स्वीकृति लेकर लौट आये। सामान उठवाया और सब उधर को चल दिए। हमें मार्ग में एक भोजनालय पर रुकने के लिए इंगित कर दोनों भाई सामान पहुँचाने चल दिये। आधा घण्टा, एक घण्टा बीता किन्तु जाने वाले न लौटे। हम भोजनालय के द्वार पर थे और वे बेचारे उस ठण्ड में नये मकान की खोज में। ठण्ड पर्याप्त बढ़ चुकी थी, हम सब भोजनालय के द्वार पर खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे। उत्तरोत्तर बेचैनी बढ़ रही थी। नया प्रदेश, रात्रि के लगभग नौ बज चुके थे। भोजनालय भी बन्द होने की तैयारी में था। सारा आनन्द किरकिरा हो गया। मुझे एक शंका ने आ घेरा। दोनों भाई गत वर्ष से थोड़े–थोड़े हृदय–रोग के शिकार हो चुके थे। भीतर से एक ध्वनि उठी। जब व्यक्ति उसकी देन पर सन्तोष नहीं करता तब परेशानी का शिकार होता है जो इसकी अक्ल की देन होती है। सहज प्राप्त में ही सन्तोष कर उसकी इच्छा में अपनी इच्छा मिलाने में ही सुख है। बहुत प्रतीक्षा के बाद हमारे दोनों भाई लौटे पर नितान्त निराशपूर्ण आकृति को लिए। नये मकान का ढाँचा सन्तोषजनक न था, पर अब टिकना ही था। इधर भोजन थोड़ा भी सन्तोषजनक तो क्या होना

था, एक निवाला गले से उतारना भी कठिन था किन्तु ''मरता क्या न करता'' वाली उक्ति ही सिद्ध हुई। ज्यों–त्यों सन्तोष करके नये घर की ओर चल पड़े। यहाँ क्या बीती वह भी स्मरणीय ही रहेगी। हम चल रहे थे, नये घर की ओर चलते ही गए, पर कहीं नये घर का सुराग न मिला। चलते–चलते थक गए और हँसते–हँसते पेट दुखने लगा। एक लम्बा सा चक्कर काट के फिर हम वहीं मन्दिर वाले सरोवर के पास आ जाते। यह क्या खेल है एक दिलचस्प मजाक बन गया। हैरान भी थे, हँस भी रहे थे। सारी परिक्रमा कर डाली पर वह स्थान न मिला।

इतने में एक व्यक्ति द्वारा समाचार मिला कि अभी एक घण्टा मन्दिर खुला है, एकान्त दर्शन का समय है। यदि आपको दर्शन करने हों तो भागो। 4 रुपये प्रति व्यक्ति टिकट लेकर लाइन में लग जाओ। हम पिछला सब भूल गये, भागे और पंक्ति में लग गए। थोड़े ही व्यक्ति थे, जल्दी–जल्दी आगे बढ़ते गये। यह मन्दिर अपनी शोभा में अतुलनीय ही है। यह मन्दिर बाला जी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। दूर से ही बत्तियों की आभा दृष्टिगत होती है। उस विद्युत ज्योति से आस–पास का सारा आकाशमण्डल ज्योतिर्मय भासता है। हजारों की गणना में लट्टू लगे हैं। मन्दिर के चारो ओर की चारदीवारी पर बड़ी भारी परिक्रमा है। सारी परिक्रमा में प्रस्तर मूर्तियाँ अत्युत्तम कला का नमूना हैं। एक देखो तो देखते ही रहो, आगा भूल ही जाता है। स्वर्ण के गुम्बद, चाँदी–स्वर्ण मिश्रित द्वार, स्थान–स्थान पर भगवान के स्वर्ण निर्मित वाहन, ऊँचे–ऊँचे स्वर्ण कलश। कितना धनी और विस्तृत परिधि वाला है यह मन्दिर, कह सकना ही असम्भव है। व्यक्ति चकाचौंध में आपा ही भूल जाता है। हम आगे बढ़े, बढ़ते ही गये। एक लम्बा रास्ता पार करके मन्दिर के मुख्य द्वार तक जो भीतरी द्वार है, वहाँ पहुँच गये। पहुँच तो गये मगर वहाँ तो जी भर के कोई दर्शन कर ही नहीं सकता है। एक व्यक्ति के लिये रास्ता बना था। एक–एक करके आगे बढ़ते गये और झट से बाहर होते गये। एक–एक मिनट ही वहाँ आप रुक सकते हैं। तत्काल ही 'सरको–सरको' की ध्वनि ऊधम मचाने लगती है। यह 'तिरुपतिनाथ बाला जी' का मन्दिर कहलाता है। एक काले पत्थर की भगवान की मूर्ति है, हीरों की जगमगाहट में मूर्ति चमक रही है। शृंगार बड़ा ही अद्‌भुत है।

दस मिनटों में ही हीरों की चकाचौंध और स्वर्ण की पीतवर्ण आभा पर मुग्ध होते–होते दूसरी ओर से फिर परिक्रमा में हम आ पहुँचे और फिर अपना घर ढूंढना आरम्भ किया। परिक्रमा के बाहरी परकोटे की सारी प्रदक्षिणा लगभग पूरी हो गई। सारा तिरुमलाई ही घूम लिया पर घर न मिला। पैर चलने से इन्कार कर गये। टाँगें लड़खड़ा रही थीं पर हमारी हँसी न रुकी इस भूल–भुलैयों के तमाशे में। लगता था कोई चौरासी का चक्कर कट रहा है। लगभग 11:30 बजे हमें एक छोटी सी गली जैसे यमराज का रास्ता हो, मिली। एक भाई ने आवाज दी आ जाओ मिल गया। हमने जब देखा तो कुम्भी नरक ही लगा। बेचारे अधिकारी ने फ्लश तथा गुसलखाने और छोटी–छोटी अन्धेरी सी दो कोठरियों को मिलाकर वह चार कमरे का मकान कहा था। मकान जो था सो था ही पर पानी था, फ्लश थी, ऊपर छत, नीचे फर्श और किवाड़ थे। उस विकट काल में यह ही नियामत थी। बिस्तर खोले और पड़ गये।

नींद तो क्या लेनी थी, थोड़ी–थोड़ी टाँगें पसार सके। दिल में धड़कन भी थी कि कहीं हम सोकर समय न काट दें।

क्योंकि प्रातः 5 बजे ठाकुर के निःशुल्क खुले दर्शन मिलते हैं, यह हमें मन्दिर में ही बता दिया गया था। इसलिए हम नित्य–कर्म से निवृत हो ठीक पौने पाँच बजे मन्दिर में जा टपके। वहाँ तक जाते दस मिनट भी न लगे क्योंकि वह घर जो रात को दुर्लभ हो गया था, मन्दिर के पास ही पार्श्व में था। 'दीवार पीछे परदेश होता है', वाली उक्ति चरितार्थ हो रही थी। समय बहुत मधुर लगा। उस पावन ब्रह्मवेला में घण्टे–घड़ियाल, शंख ध्वनि कितनी भावपूर्ण लगती थी! वातावरण बहुत शान्त और सौम्य था। ऐसा लगा कि जिस दिव्यता के अणुओं का प्रसार भीड़भाड़ में मन्द गति में था, इस समय बड़े वेग से हो रहा था, जैसे अलौकिक शान्ति का राज्य हो। मेरा इस प्रदेश में यह पहला अनुभव था। बड़ा सुहावना समय था। हम एक–एक करके रात वाले मार्ग से ही आगे बढ़े। इस समय के दर्शन बड़े खुले थे और प्रभावशाली भी। सम्भवतः इस समय भीतर विद्युत का प्रकाश था। बड़े भाव से दर्शन किये, पूजा चढ़ाई, हंडियों में यथाशक्ति दान डाला और प्रसाद लेकर बाहर आ गए। स्नान तो कर ही चुके थे। सबने एक स्थान पर कॉफी ली और नगर देखते, घूमते–फिरते स्थान पर आ गये।

अब वापसी का उतावलापन था। मन एक दिन और वहाँ रहना चाहता था किन्तु आठ को ही हमें पान्डिचेरी पहुँचना था। पहले से ही पान्डिचेरी की मातेश्वरी के दर्शनों का समय 9 तारीख को प्रातः 9:00 बजे तय था। वहाँ से स्वीकृति आ चुकी थी। अतः वहाँ से चलना आवश्यक था। घर से बाँध बँधा कर सामान लाया गया। बस स्टैण्ड पर ही कुछ नाश्ता किया और सामान वहाँ सुरक्षित कर मन्दिर का बाजार देखने चल पड़े। बहुत ही समीप लगा सब कुछ।

बाजार के शुरु में एक द्वार है गोपुरम की शक्ल में, जिस पर सारी रामलीला सुन्दर कलात्मक ढंग से बनी है। पत्थर तराश कर सब मूर्तियाँ बनाई गई हैं। बड़ा मनमोहक दृश्य है। अगले द्वार पर लगभग सारी कृष्णलीला तथा शिवलीला है। चारो तरफ चार गोपुरम् द्वार हैं इसी तरह की मूर्तियों से सजे। देवियों ने स्मृति रूप कुछ सामग्री वहाँ की खरीदी। अन्त में धीरे–धीरे बस से अपने ठिकाने की ओर चल दिए।

एक तो दिन था और दूसरे उतराई थी। मार्ग वैसा भयकारी न लगा। झट से बस अड्डे पर आ लगे। दूसरी बस से सायं तक मद्रास पहुँच गये। दूसरे दिन 2:30 बजे की बस से हमें पान्डिचेरी के लिए चलना था। ढेर सा सामान जैसे कोई बारात आई हो, 35 छोटे–बड़े नग, 10 व्यक्ति। आज तक तो यह सारा सामान हिला न था। अब हमें इधर वापिस नहीं आना था। आज डोसा इडली पाने के लिए तथा दोपहर के भोजन के लिए हम फिर मलिक जी के अतिथि थे। सब कर कराकर सारा सामान लादकर हम चल पड़े और मद्रास को अन्तिम प्रणाम कर आगे बढ़े। बढ़ते गये, मार्ग तो सुन्दर था ही, खाते–पीते सायं 6:30 बजे के लगभग हम पान्डिचेरी के एक बाजार में जा पहुँचे। बस से उतरते ही रामास्वामी नामक एक भाई के दर्शन हुए जो एक फ्रेंच भाई के साथ गाड़ी लेकर हमें लेने के लिए वहाँ आए हुए थे। बड़े मधुर सौम्य रूप के थे वे दोनों सज्जन। धीरे–धीरे हमारा सामान कुछ गाड़ी में, कुछ रिक्शाओं में लादकर आश्रम की ओर बढ़े। ज्यों–ज्यों हम आगे बढ़ते गये मुझे कुछ अलौकिक सा अनुभव होता गया। लगा भीतर कुछ मधुर–मधुर धारा सी चलने लगी है। मुझे भगवती शक्ति का अवतरण जो मधुरता के रूप में वहाँ हो रहा था उसकी स्पष्ट अनुभूति होने लगी। जैसे–जैसे गाड़ी आगे बढ़ती गई, शक्ति का वेग उतना ही स्पष्ट होता गया। किन्तु जितना वेग बढ़ रहा था उतना ही शान्तिपूर्ण होता जा रहा था। थोड़ी ही देर में हम एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जिस भवन को इण्टरनेशनल भवन कहते हैं। वहीं हमारे लिए पाँच कमरे आरक्षित थे। हम 10 व्यक्तियों ने अपने–अपने साथियों के साथ एक–एक कमरे को अधिकृत करके सामान लगा लिया और हम हाथ–मुँह धोकर एक भाई श्री कुलकर्णी जी के साथ आश्रम के मुख्य भवन की ओर चल दिए। थोड़ी ही दूर जाने के बाद हमने एक भवन के मुख्य द्वार से भीतर प्रवेश किया। यह आश्रम का मुख्य भवन है जिसमें महर्षि अरविन्द की समाधि है।

मुख्य द्वार पर रक्तवर्ण विद्युत ज्योति से प्रकाशित किया श्री अरविन्द का शक्ति–चिन्ह है। एक–दो मोंड़ लेकर हम उस प्रांगण में जा पहुँचे जहाँ श्री अरविन्द की समाधि बनाई गई है। कोई 9–10 फुट लम्बी, इससे आधी चौड़ी सफेद संगमरमर के पत्थरों से निर्मित बहुत कलात्मक ढंग से पुष्पों से सजाई गई वह समाधि थी। फूलों की तथा अगरबत्ती की सुगन्ध से वह प्रांगण ओत–प्रोत था। कुछ लोग घुटने के बल

समाधि पर सिर टेके शान्त भाव से शक्ति–प्रसार की सौम्य मधुर क्रिया का सम्भवतः आस्वादन कर रहे थे। जैसे ही हमने आँगन में प्रवेश किया मुझे एक मदभरी मधुरता ने घेर लिया।

कुछ बरसता हुआ अलौकिक स्पन्दनों में चारो तरफ मुझे स्पष्ट प्रतीत हो रहा था। एक सौम्य शक्ति–प्रवाह मेरे सिर से पाँवों तक बह निकला। प्राण की गति में आनन्द भर गया। शरीर एक दम शिथिल हो गया। मैं समाधि से थोड़ा हट कर घुटने टेक कर बैठ गई। बाकी भाई बहिन भी बैठ गये। कोई पौन घण्टा बीत गया, उठना असम्भव हो रहा था, किन्तु साथ वाले भाई बहिनों का ध्यान आया जिन्होंने कुछ पेट–पूजा भी करनी है। आश्रम में आने से पहले हमें बताया गया था कि 7 बजे हमें आश्रम के भोजनालय में अपना रात्रि भोजन ले लेना होगा। बस बलात् शरीर को इधर धकेलना पड़ा। हम धीरे–धीरे भोजनालय तक पहुँचे। जो वहाँ का नियम है उसी के अनसुार हम भी भोजनार्थियों की पंक्ति में लग गये। बारी आई, चार ब्राउन डबलरोटी के स्लाइस, एक कटोरा दूध, एक कटोरा पतली दाल। इस तरह का सात्विक भोजन चौकियों पर बैठ कर खाया और वापिस घर आ गये।

रात विश्राम किया। प्रातः लगभग पौने पाँच बजे हम कमरों को ताले लगाकर आश्रम की ओर चल दिये। आश्रम साढ़े चार बजे खुल जाता है, ऐसा हमने रात ही मालूम कर लिया था। सम्भवतः समाधि सेवा का कार्य वहाँ चार बजे ही शुरू हो जाता था। जब हम पहुँचे तब तीन चार देवियाँ समाधि को फूलों से सजा रही थीं। कुछ कर्मचारी झाड़ू आदि लगा रहे थे। हम सब समाधि के शीश की ओर अपने–अपने आसन बिछाकर बैठ गये। अगरबत्ती एवं फूलों की सुगन्धें मिलकर वातावरण को भरपूर स्निग्ध बना रही थीं। बैठते ही प्राण ऊर्ध्व हो गये और मुझे भाव समाधि की अवस्था का रस आने लगा। भीनी–भीनी सुगन्ध तन–मन को एक तरह के शान्त सरस भाव में लीन करने लगी। शक्ति का प्रवाह बड़ा सौम्य था। अवतरण में बड़ा माधुर्य था। मन और प्राण किसी अलौकिक शान्ति में लय होने लगे। शरीर शिथिल और चेतना एक अलौकिक प्रकाश के जगत मे थी। लगभग एक घण्टे के बाद चेतनाबद्ध संकल्प उठा और मैंने आँखें खोलीं। सब लोग एक ओर बैठे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उठे, चले और निज स्थान पर पहुँचे। नाश्ता किया और भावी कार्य की तैयारी होने लगी।

हमारे पहुँचने से पहले ही हमारी सूचनानुसार माता जी के दर्शनो का समय निर्धारित हो चुका था। 9 तारीख प्रातः 1 बजे हमें दर्शनों के लिए जाना था। एक भाई श्री कुलकर्णी जी, जिनका मैं पहले वर्णन कर चुकी हूँ, ने ही हमारा सारा कार्यभार अपने कन्धों पर उठा रखा था। वह समय पर आये और हम सब को साथ ले, माता जी के स्थान की दिशा में चल दिये। माँ के लिये थोड़े–थोड़े फल फूल तथा कुछ धनराशि भेंटार्थ लिफाफों में डाल कर लेकर हम चले जा रहे थे।

उसी समाधि वाले प्रांगण से होकर एक बरामदे में पहुँचे जहाँ महर्षि अपने समय में रहते थे। जहाँ आजकल माता जी रह रही हैं, वहाँ जाकर कुछ पैड़ियें ऊपर चढ़कर एक बरामदे में जा इकट्ठे हुए। वहाँ पहले भी कुछ दर्शनार्थी बैठे थे। एक वृद्ध महानुभाव, श्री चम्पक लाल जी हाथ में लिस्ट लिए खड़े थे। बारी बारी आवाज देकर क्रमशः लोगों को बुलाते और केवल दर्शन करके दो–दो मिनट बाद लोग बाहर आ जाते। ऐसा सुना कि यह भाग्यशाली भाई लगभग 20 घण्टे रात–दिन में माँ की सेवा में बिताते हैं।

हमारी भी बारी आई। जैसे हमें समझाया गया था, भेंट माता जी को देते गये। बदले में उनकी कृपा स्वरूप छोटे–छोटे लिफाफों में दो तीन फूल पत्ती भी हमें देती रहीं। आधा मिनट कृपा दृष्टि डाली। हमने सिर झुकाया, माँ ने हाथ से छू दिया। हम नमस्कार करके बाहर आ गये।

यह सब इतनी जल्दी–जल्दी हुआ कि किसी अनुभूति का प्रश्न ही नहीं था। बस इतना गर्व पर्याप्त है कि माँ के दर्शन और स्पर्श मिला। सम्भवतः यह भी बड़े भाग्य से मिलता है। इतना मैं अपने अनुभव से अवश्य कह सकती हूँ कि जब तक हम दर्शनों की प्रतीक्षा में वहाँ बैठे रहे मेरी आँखें बन्द ही रहीं और शक्ति के अवतरण की कृपा का विशेष अनुभव हुआ। प्रवाह की गति बड़ी तीव्र थी। समाधि के पास बैठने से जो शान्त रस के प्रवाह की अनुभूति थी, उसकी तुलना में इस प्रसार में तीव्रता थी। कहते हैं कि यह वही

स्थान है जहाँ खड़े होकर श्री अरविन्द तथा माता जी गत काल में भक्तों को दर्शन देते रहे हैं, यह वही बालकनी है, वही बरामदा।

माताजी के दर्शन के बाद वह प्रवाह नितान्त शान्त हो गया और मैं अपने को पूर्ववत् पाने लगी। अब हम सब निज स्थान पर आ पहुँचे। आज का भोजन औरोविल भोजनालय में पाया। आज ही हमें श्री नवजात जी से सायं 6 बजे मिलना है। यह भाई श्री अरविन्द औरोविल सोसायटी के मुख्य सेक्रेट्री हैं। भाई कुलकर्णी जी के साथ हम यथा समय उनके स्थान पर पहुँचे। वे बड़े भाव से मिले। बहुत ही सज्जन पुरुष लगे। बड़े स्नेह से लगभग एक घण्टा बातचीत होती रही। श्री अरविन्द की साधना पर उन्होंने थोड़ा प्रकाश डाला। साधना धाम के विषय में कुछ पूछताछ के बाद अपना कार्ड दिया और कहा, स्वामी रामानन्द जी का साहित्य मुझे भेज देना और कहा, कभी–कभी यहाँ आते रहना। वहाँ से निकल कर हम फिर समाधि के प्रांगण में आ गये और वहीं सायं साधना करके भोजन किया। फिर निज स्थान पर आ गये।

तीसरे दिन हम पान्डिचेरी की पर्यटक बस से ''औरोविल'' अरविन्द नगर पहुँचे जो पान्डिचेरी मिशन की ओर से पान्डिचेरी से कुछ दूर तमिलनाडु की सीमा के अन्दर बन रहा है, जिसकी परिधि 16 मील में है और जिसकी रूपरेखा माँ की आज्ञा से माँ के पौत्र ने तैयार की है, उसे देखने गये। इस नगर के मध्य में एक मन्दिर मातृमन्दिर के नाम से बन रहा है, जिसकी लागत एक करोड़ बताई जाती है। उसके चारों ओर नगर बनेगा। बड़ी–बड़ी सुन्दर भवन रचना देखी, वह बगीचे देखे जहाँ से समाधि की पूजार्थ दिन भर पुष्प आते रहते हैं।

कुछ पान्डिचेरी की इन्डस्ट्री, विद्यालय, अस्पताल देखे और कुछ हमने खरीदा भी। शाम को घर पहुँचे। इसी सायं 6 बजे हमें आश्रम के, या यूँ कहिये कि अरविन्द मिशन के एक महान् पुरुष नलिनी कान्त जी से भेंट करनी थी। यह महान् पुरुष श्री अरविन्द के प्रारम्भ के साथी हैं। बड़े सौम्य, शान्त, गम्भीर प्रकृति के लगे। मैं केवल 5 मिनट के लिए ही उनके दर्शन कर सकी और वहीं वह कमरा देखा जिसमें श्री अरविन्द 24 वर्ष रहे हैं। इसी कमरे में अन्तिम 12 वर्ष उनके एकान्तवास के बीते थे। वहाँ एक बहिन, जो श्री अरविन्द के समय से ही उस स्थान की सेवा में रहती हैं, के भी दर्शन हुए। यह सब देख कर अपनी सायंकालीन साधना के लिए फिर हम सब समाधि प्रांगण में आ पहुँचे । मुझे उस स्थान पर सदा ही शान्त, सौम्य, मधुर शक्ति अवतरण का भान हुआ। आज कुछ तीव्र अनुभूति थी। दूसरी प्रातः को हमें पाण्डिचेरी से विदा लेनी थी। प्रातः ही आठ बजे की बस से तिंजौर चिदम्बरम् के दर्शन करके त्रिचुरापल्ली पहुँचना था। प्रातः ही सब सामान बाँध कर हम समाधि प्रांगण में साधना के लिए जा बैठे।

आज हमारी पान्डिचेरी से विदाई थी। सम्भवतः वह महान् चेतना, पान्डिचेरी का देव हमें विदाई देने के लिए अपनी महती चेतना को प्रेरित कर हमें अपने स्पर्श से आशीर्वाद दे रहा था। सबने प्रतीत किया कि आज की बैठक में शक्ति की क्रिया में एक विशेष आनन्दप्रद माँ के स्नेह के स्पर्श जैसा प्रवाह था जो पहले अनानुभूत था। मेरी दशा तो अद्भुत थी। शरीर यहाँ शैथल्य को प्राप्त था। इर्द–गिर्द कुछ अलौकिक घेराव सा था किसी तरंग का। हिलना कठिन लग रहा था। पर आज चलना है, समय कम था, सब लोग प्रतीक्षा में खड़े थे। आँख खुली फिर बलात् बन्द हो गई। फिर खोली फिर बन्द हो गई। कठिनता से उठी, समाधि पर सिर टेका ही था, बस ऐसा लगा कि किसी ने सिर वहाँ चिपका दिया हो। फिर चलने के संकल्प ने घेरा। मुश्किल से गिरती–पड़ती, सम्भलती, ललचाई आँखों से उस विग्रह को देखती बाहर आ गई सबके साथ। घर में आकर सामान उठाया, लादा और हमारी बस आगे बढ़ी। इस अन्तिम अनुभूति का मद मुझे लगभग आधा रास्ता घेरे रहा।

पान्डिचेरी से हमें चिदम्बरम् तन्जौर होते हुए त्रिचुरापल्ली पहुँचना था किन्तु भाइयों के परामर्श से हम सीधे त्रिचुरापल्ली पहुँचे, रात के लगभग 9 बज गये थे। त्रिचुरापल्ली एक ऐतिहासिक स्थान है। यह बहुत बड़ा नगर है और सुन्दर भी। लोग सीधे–सादे और सुलझे हुए से लगते हैं। यहाँ तीन मन्दिर हैं। एक रंग जी का वैष्णव मन्दिर है। एक जम्बुकेश्वर महादेव का मन्दिर है। एक श्री गणेश जी का रॉक मन्दिर है। पहले दोनों मन्दिर देखे। यह इस दिशा के पहले मन्दिर हैं जिनमें देवता को प्रकाशित करने के लिए बिजली

का प्रकाश है। अन्यथा सब मन्दिरों में छोटे–छोटे चिराग ही जलते नजर आते रहे। रॉक मन्दिर एक ऊँचे गिरि शृंग पर है जहाँ लगभग 300 पैड़ी चढ़कर ऊपर जाना होता है। पैड़ियाँ पत्थर की हैं। ऊपर छोटा परन्तु सुन्दर एक मन्दिर है। ऊपर चढ़कर पूरे त्रिचुरापल्ली के दर्शन होते हैं। कावेरी नदी का दृश्य बहुत ही लुभावना लगता है। ठण्डी हवा के झोंके व्यक्ति को बड़ी शान्ति प्रदान करते हैं।

आज ही रात 11 बजे की गाड़ी से हमें रामेश्वर धाम के लिए चलना था। सो जल्दी–जल्दी सामान बाँधकर उस होटल से चलकर हम रेलवे प्लेटफॉर्म पर आ टिके।

13 की प्रातः ही हम श्री रामेश्वर धाम पहुँच गये। उतरते ही लगा जैसे हम किसी तपोभूमि में आ गये हैं। न पिछली भीड़–भाड़, न चहल–पहल। बस चन्द यात्री और कुली। स्टेशन बड़ा साफ–सुथरा। वहाँ घोड़ागाड़ी अपने ही ढंग की है। उन्हीं से हम शहर की ओर चल पड़े। मन्दिर से समीप ही देवस्थान के नाम से एक भवन है। उसी में 3 कमरे लेकर हम टिक गये। कमरे बड़े सुन्दर हैं। स्नानागार तथा फ्लश प्रत्येक के साथ है। 6 रुपये प्रति कमरा किराया है। वहीं हमने रहना पसन्द किया। चाय, भोजन की व्यवस्था स्वयं करते रहे, सामान साथ था ही। पण्डे तो स्टेशन से ही साथ हो लिये। सो उन्हीं के साथ हम सागर स्नान के लिये चल दिये। सागर तट पर सागर की पूजा हुई और उन्हीं गीले कपड़ों से हम पण्डे के आदेशानुसार मन्दिर को चल दिये। मन्दिर की परिक्रमा में 20 कुण्ड हैं भिन्न–भिन्न देवताओं के नाम पर। एक–एक करके सभी ने जल से स्नान किया। बड़ी लम्बी–चौड़ी परिक्रमा में यह कुण्ड स्थित हैं। भागते–भागते टाँगें लड़खड़ाने लगीं, 12 बज गये। मन्दिर पट बन्द हो गये। दर्शन न हो सके।

अब शाम को दर्शन होंगे। भोजन करके बीच का जो समय था उसमें सीताकुण्ड, लक्ष्मणकुण्ड, राम झरोखादि स्थानों के दर्शन कर आये और वापिस पहुँचे। यहाँ का विधान भी अद्‌भुत ही है। पहले पण्डा हमें अपने घर ले गया। वहाँ उसने उस गंगा जल की पूजा करवाई जो हम हरिद्वार से रामेश्वर चढ़ाने को ले गये थे। पूजा के बाद वस्त्र दक्षिणा, भोजनादि के रुपये ले लेने के बाद हमें छुट्‌टी दी और पूजा सामग्री तथा वही गंगाजल लेकर हम मन्दिर पहुँचे। वहाँ भी टिकट लगती है। वह लेकर एक मार्ग से हम मुख्य शिवलिंग के सामने पहुँच गये। पूजा करवाई, जल चढ़ाया। यहाँ पहुँचने तक भाग–दौड़ ही रही। अब जरा ध्यान करने पर शक्ति–क्रिया की प्रतीति होने लगी। यहाँ पान्डिचेरी जैसी मधुर शक्ति–क्रिया नहीं है। आनन्द कण तो है ही किन्तु क्रिया तीव्र है। आरोह की मुख्य प्रतीति थी। तब तक सायं आरती का समय हो गया था।

यह सब देखकर पार्वती मन्दिर के दर्शन किये और वापिस आ गये। 14 नवम्बर को हमें मदुरै के लिए चलना था, और दस बजे हमें स्थान खाली करना था। सामान उठाकर हम फिर रेलवे स्टेशन पर पहुँच गये।

दोपहर 2 बजे की गाड़ी से चलकर हम रात दस बजे मदुरै पहुँच गये। मदुरै बड़ा ही सुन्दर स्थान है। यहाँ का हथकरघा का काम बड़ा प्रसिद्ध है। यहाँ का मुख्य मन्दिर मीनाक्षी मन्दिर है। पार्वती जी का नाम यहा मीनाक्षी है जिसका अर्थ है मछली जैसी आँखों वाली। पूजा का यहाँ वही ढंग है जो अन्य स्थानों में था। किन्तु शक्ति की क्रिया यहाँ बड़ी सौम्य है। माँ की कृपा के आशीर्वाद की विशेष प्रतीति हुई पूजा के समय। किन्तु मैने ऐसा प्रायः अनुभव किया कि जब–जब भी किसी शक्ति या शैव्य मन्दिर में गई, वाणी नितान्त मौन हो गई। प्राणमय कोष का प्रभाव वाणी पर अधिक रहा। चुपचाप सर्वक्रिया विहीन सी। सारा मन्दिर घूमा, परिक्रमा की, पर एकदम शान्त वाणी एवं नितान्त मौन। मदुरै में दो मन्दिर और भी दर्शनीय हैं पर आज सारे शहर में हड़ताल है, न रिक्शा, न बस ही चल रही है। मन्दिर 10 मील पर है सो मन ही मन नमस्कार करके सन्तोष कर लिया। कुछ देवियों ने यहाँ साड़ियाँ आदि खरीदीं।

मन्दिर के चारों ओर द्वार हैं जिनके गोपुरम् बहुत ऊँचे–ऊँचे हैं। देवी–देवताओं की सैकड़ों रंग–बिरंगी मूर्तियाँ बड़े कलात्मक ढंग से बनी हैं। मुख्य गोपुरम् तो बहुत ही ऊँचा और बड़ा है जैसे कोई आकाश से बातें करता हो। एक तरफ महादेव का मन्दिर है, दूसरी ओर मीनाक्षी देवी का। मध्य में एक सुन्दर तालाब

है किन्तु स्वच्छता का निशान नहीं। सारे जल पर काई छाई है। दक्षिण भारत में प्रत्येक मन्दिर में गणेश जी का तथा नवग्रह का स्थान अवश्य मिला।

लोग नवग्रह का पूजन यहाँ अवश्य करवाते हैं। बड़े सुन्दर गोपुरम् हैं पर जैसी शिल्पकला का सुन्दर रूप हमने तिरुपति में देखा था वह कहीं भी देखने को नहीं मिला।

16 तारीख की प्रातः हम कन्याकुमारी पहुँच गये। कहते हैं यहाँ पार्वती जी ने कुँवारीकन्या के रूप में तपस्या की है। उन्ही की पूजा यहाँ होती है। प्रातः ही देवी के दर्शन कर लिए। पूजा की यहाँ भी वही विधि है। जिस होटल में हमने डेरा डाला, सामने ही सागर का दृश्य था। एक अथाह जलराशि, नील वर्ण आभा, बार–बार उठती लहरें और सागर के किनारे से काफी दूर एक छोटी सी सागर से उभरी शिला की चोटी पर एक पत्थर से बना स्वामी विवेकानन्द स्मारक है। स्टीम बोट से यहाँ जाना होता है। यहाँ रामकृष्ण मिशन का नाव का अपना प्रबन्ध है। टिकट लेकर आप प्लेटफार्म पर जाकर नाव पर सवार होते हैं। बड़ा ही मनमोहक दृश्य था नाव का आना जाना। विशाल नील जलराशि पर रत्न वर्ण का मन्दिर गर्व से सिर ऊँचा किये वह अध्यात्म का प्रहरी खड़ा है। छोटा सा, पर बड़ा साफ–सुथरा, एक बाजार है, और भी कई एक अच्छे–अच्छे रहने के स्थान हैं, जो किराये पर मिल जाते हैं।

सामानादि टिका कर हमने भोजन किया। वर्षा ने बल पकड़ा लिया। लगा हम स्मारक के दर्शन न कर सकेंगे। वर्षा में नाव नहीं चलती। दिन सारा यूँ ही बीता। किन्तु दीनबन्धु तो दीनबन्धु ही हैं। मध्यान्तर में वर्षा थम गई। नाव फिर चलने लगी। हम सब विवेकानन्द स्मारक देखने के लिए भागे। यह चट्टान वह स्थान है जहाँ विवेकानन्द अपने अन्तिम काल में तीन दिन ध्यान मग्न रहे थे। स्मारक में प्रवेश करते ही दांई ओर एक मन्दिर बना है। उस मन्दिर में एक छोटी सी जगह पर एक पत्थर के चारों ओर सुन्दर सा जंगला बना है।

कहते हैं कि जब विवेकानन्द ने मल्लाहों से उस चट्टान तक पहुँचाने के लिए प्रार्थना की तब उन्होंने नाव का किराया माँगा, पर उनके पास देने को पैसा नहीं था। नाव वाले ने जब ले जाने से इन्कार किया तो उस नरकेसरी ने नाव के साथ ही छलाँग लगा दी और तैरते हुए उस चट्टान तक पहुँच गये। जाते ही उन्हें एक कोमल चरण का चिन्ह उस चट्टान के एक तरफ लगा हुआ नजर आया। उसी चरण–चिन्ह के इर्द–गिर्द सुन्दर सा पीतल का जंगला बनाया गया है। मन्दिर के पूर्व भाग में वह स्थित है। बिल्कुल उसके सामने एक भव्य भवन है और दोनों भवनों के मध्य में बहुत ही सुन्दर सा एक प्रांगण है, जिसमें स्थान–स्थान पर मार्गदर्शक तीर बने हैं। सामने कुछ पैड़ियाँ चढ़ कर एक बड़ा सा बहुत सुन्दर मुख्य द्वार है, जो बहुत कलात्मक ढंग से निर्मित है।

प्रवेश करते ही एक बड़ा सा हॉल (Hall) नजर आता है जिसमें ठीक सामने उस नरकेसरी का स्टेचू (Statue) चमकती काली धातु, जिसे अष्ट धातु मिला कर तैयार किया जाता है, बनाया गया है। उस स्टेचू पर नजर जाते ही लगता है इस व्यक्तित्व की चेतना किसी महान् चेतना का स्पर्श करके बोल रही है। गम्भीर मुद्रा में तेजोमय आकृति। पूरे कद का वह बोलता हुआ स्टेचू कितना सुन्दर और कलात्मक है अनुमान लगाना ही असम्भव है। काली धातु में स्वर्ण की आभा चमक रही है। धोती कुरता, लटकता हुआ कन्धे के ऊपर पशमीना, मस्तक पर पगड़ी, ऊँची दृष्टि, जैसे किसी महती चेतना से बातें कर रही हो, गर्वीली मस्त मोटी–मोटी आँखें। कितनी भव्य मूर्ति है! कितना आकर्षण है! जिस चबूतरे पर मूर्ति खड़ी है उसके चारों ओर चार स्तम्भ हैं। अत्यधिक कलापूर्ण काम है उन स्तम्भों पर। काला पत्थर, सफेद मीनाकारी, ऊपर गोलाकार सुन्दर गुम्बद। धन्य है वह हृदय जिनकी यह भावपूर्ण उपज है।

इस भव्य मूर्ति के बिल्कुल सामने मुख्य द्वार के दोनों ओर दो छोटे मन्दिर हैं। एक श्री रामकृष्ण परमहंस का, एक माँ शारदा का। उनमें दोनों के दो तैलचित्र हैं। अत्यन्त जीवित मूर्ति से, बड़े प्रभावशाली।

उस नरकेसरी की मूर्ति के सामने जाते ही मेरी अद्‌भुत दशा हुई। उस महान् व्यक्तित्व का प्रभाव प्राणों में तूफान ले आया। हृदय तथा सहस्रार की गति तीव्र हो उठी। शरीर एक दम शिथिल, शून्य, मन्दिर सी

देह, शक्ति की तीव्र गति से सिर घूमने लगा। जब तक हम वहाँ खड़े रहे, अलौकिक गति से शक्ति क्रिया होती रही। यह अनुभूति मेरे लिए अनानुभूत थी, अपूर्व थी।

पाण्डिचेरी में मेरी परानुभूत की जिस क्रिया की अनुभूति थी, वह इससे भिन्न थी। उसमें मधुरता थी, आनन्द था, शान्ति का प्रसार था। किसी ऊँची चेतना के स्पर्श की स्पष्ट अनुभूति थी। यहाँ वह बात नहीं है। प्राण में एक तूफान है। गति में अवतरण के साथ–साथ भावों का अलौकिक उभार है। हल्का–हल्का कम्पन है। पर जो भी है बहुत ऊँचा है। अन्ततोगत्वा बलात् वहाँ से हटना पड़ा।

मार्गदर्शक तीर के सहारे हम एक मार्ग सी नीचे आ गये। उसी स्मारक के मन्दिर के नीचे 3 कमरे हैं। एक ध्यान–मन्दिर, एक पुस्तकालय, एक दफ्तर। वस्तु विक्रेता वहाँ खड़ा है। चित्र, पुस्तक आदि वह नियत दाम पर बेचता है। ध्यान–मन्दिर सम्पूर्ण काले संगमरमर का बना है। सामने काले पत्थर पर स्वर्ण का ऊपर को उभरा हुआ ॐ शब्द बना है। सुन्दर रश्मियाँ इर्द–गिर्द बनी हैं। लोग वहाँ ध्यान करते हैं। हम भी वहाँ गये। जाते ही मेरा सब आपा स्तब्ध हो गया। नितान्त क्रिया शून्य और मस्तक में त्राटक सी गति होकर दृष्टि स्थिर हो गई। ध्यान अनदेखी दिशा में कहीं स्थिर हो गया। एक दम पत्थर की मूर्ति खड़ी है। मैं भीतर से इसका पूरा अनुभव कर रही थी। अब चलना तो पीछे लगा ही था।

कुछ समय बाद सब चल पड़े, मुझे भी चलना पड़ा, पर जैसे मेरा कुछ पीछे छूट गया है। मन पंगु सा, न बोलना, न देखना, कहाँ किधर को? मन्त्र–चालित की तरह सबके पीछे–पीछे चलने लगी। कुछ फोटो आदि सब ने खरीदे। बाहर स्टीमबोट हमारी प्रतीक्षा में थी। यात्रियों की लम्बी पंक्ति लग चुकी थी। उधर लाउडस्पीकर, जिसका मैं प्रारम्भ से गाना सुन रही थी, बोलने लगा।

''साईं बाबा के चरणों में चारों धाम हमारे हैं''।

क्या ही मधुर ध्वनि थी, कितनी मधुरता भर रही थी इस ध्वनि से उस वातावरण में। सामने वही नीलवर्ण अपार जलराशि और अध्यात्म का वह प्रहरी विवेकानन्द स्मारक। अन्त में हमारी बारी आई और सबको लेकर स्टीमर आगे चला। यह स्टीमर 74 व्यक्तियों की भीड़ को ले तट पर जा लगा। सब उतरे और अपने–अपने स्थानों की ओर चल दिये। इसके उपरान्त हम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के स्मारक की ओर बढ़े। यह भव्य भवन भी एक अद्वितीय निर्माण है सागर तट पर। सर्वोदय का सुन्दर भाव चित्र है। प्रार्थना–मन्दिर के मध्य में बापू की समाधि है जिसमें उस महात्मा के अस्थि शेष रखे हैं और मुख्य द्वार के सामने, कोनों पर गुम्बद से बने हैं जो देखने में एक गिरजाघर का तथा दूसरा मस्जिद का सा दर्शन करवाता है।

यदि हम ऊपर चढ़ जायें तो सूर्यास्त तथा सूर्योदय का दृश्य देख सकते हैं। यही लोभ अधिकतर लोगों को कन्याकुमारी खींच लाता है। विद्यार्थी बड़े–बड़े समूहों में यहाँ आते हैं, पर वह हमारे भाग्य में नहीं था। वर्षा के कारण आकाश आच्छादित रहा।

अब पेट खाने को कुछ माँग रहा था। भोजन की व्यवस्था तो वहाँ खराब है, जैसे कुल दक्षिण में है। अतः जो कुछ साथ था या जो जहाँ मिल पाया, थोड़ी–बहुत क्षुधा निवृति कर रात को विश्राम किया। यहाँ एक विवेकानन्द प्रदर्शनी है जिसमें उस महान पुरुष के अलग–अलग समयों के तैल–चित्र हैं। उनमें एक आदमकद (पूरे कद का) तैलचित्र है, जिसका स्मारक में स्टेचू है। बनाने वाले ने दर्शकों के हृदय को हिला दिया है, अपनी कला से। मेरी तो वही दशा हुई जो रॉक–टेम्पिल (Rock Temple) में हुई थी। चेतना अपने साधारण स्तर से उड़कर जैसे कहीं आकाश को छूने दौड़ती हो और एक मौन व्रत ले लेती हो, उस नरकेसरी की दृष्टि को पाते ही एक अपूर्व मौन भाव समाधि सी अवस्था का बड़ा अच्छा अनुभव था। मौन भाव से कहीं डूबे रहना एक अद्भुत अवस्था थी।

एक दुविधा मेरे साथ प्रारम्भ से ही चल रही थी। मेरे साथी इन आभ्यान्तरिक क्रियाओं से सुविज्ञ नहीं हैं। साधन की प्राथमिक अवस्था में लगभग सभी चल रहे हैं। बाहर मुख होना मेरे लिये आवश्यक हो जाता

है, अन्यथा मेरी चेतना कितने रहस्यमय मोड़ काट लेती। साथी की अनभिज्ञता भी कभी–कभी बाधक हो जाती है। सामने सागर अपनी विशाल जलराशि में उतंग छालियों से खेल रहा है, जो उस अनन्त चेतना का परिचय दे रहा है।

प्रकृति माधुर्य से भरी अपनी सुषमा में अपूर्व आनन्द को उड़ेल रही है। अनन्त की महती चेतना का छोर रहित यह दर्शन है अनन्त में। साईं बाबा के रिकार्ड यहाँ स्थान–स्थान पर चल रहे हैं। सुनते ही मुझ पर उसका बहुत अलौकिक प्रभाव होता है।

मैं सागर के सामने खोई–खोई आनन्दानुभूति में घर की ओर चल रही थी। उधर देखा किसी का सामान बँध गया है, बस वाला हॉर्न दे रहा है। आज ही हमें भी इस भूमि से विदा लेना है, किन्तु अनचाहे ही।

पिछली रात मैने लगभग ढाई–तीन बजे के मध्य एक स्वप्न देखा। एक गेरुए रंग के वस्त्र ओढ़े कोई महापुरुष, एक मण्डप सा है, वहाँ खड़े हैं। दो बहिनें मेरे साथ हैं। मेरे हाथ में हरे पत्ते वाली चार छः मूलियाँ हैं, बड़ी–बड़ी सफेद, बहुत ही प्यारी–प्यारी। मैं आगे बढ़ी, वह मूलियाँ उन्हें दीं और माथा उनके चरणों में टेक दिया। उस देवता ने झट से मेरा सिर अपने हाथों में उठा लिया और हँसकर कुछ कहा। स्मरण नहीं क्या कहा। पर प्यार दिया। लोग वहाँ कुछ जमा थे, वह उन्हें सम्बोधित कर बोले 'जिनकी प्रतीक्षा थी वह आ गई, अब काम शुरू करो'। मुझे एक पल लगा यह साई बाबा हैं, कुछ बालों का ध्यान आ रहा है, जो उनके चित्र में सिर पर देखते हैं, या देवलोकवासी वेदान्तकेसरी स्वामी निर्मल जी महाराज का यह रूप हो सकता है। अस्तु कुछ भी हो कोई भी हो एक देवता का आशीर्वाद अवश्य है। आँख खुल गई।

18 नवम्बर मध्यान्तर हम दो टैक्सियों में कन्याकुमारी से चल पड़े। 11–30 पर हम रास्ते में एक मन्दिर पर पहुँचे, जिसे सुचित्रम् कहते हैं। वहाँ भगवान शेष–शैय्या पर 16 फीट लम्बे आकार में भूमि पर लेटे हैं। दर्शनों के लिए तीन द्वार हैं, एक से सिर, दूसरे से पेट तथा तीसरे से चरणों के दर्शन होते हैं। वही छोटे–छोटे चिराग, काले पत्थर की मूर्ति, अन्धेरा मन्दिर। भीड़ बहुत, कठिनता से धक्के–मुक्के में दर्शन होते हैं। इनका नाम भगवान पद्मनाभ है। सम्भवतः नाभि में कमल–नाल पर ब्रह्मा जी हैं। दर्शन तो पूरे होते ही नहीं, नारियल तेल के छोटे–छोटे दिए, धुएं से दम घुटता है और झट से मन्दिर के बाहर निकलने को मन होता है। पूजा विधि सब जगह वही है। नारियल, केले के फूल, अगरबत्ती, सिंदूर, कहीं–कहीं एक बीड़ा पान। कहीं मिष्ठान का नाम नहीं।

इसी मन्दिर के बाहर, बरामदे के एक कोने में हनुमान जी की 16 फीट ऊँची काले पत्थर की एक प्रतिमा खड़ी है, वह तो दर्शनीय ही है। उस पर केवड़े का जल चढ़ता है, जो वहीं से आठ आने की एक पाव भर की बोतल में मिल जाता है। वहाँ के दर्शन करके चले और हम त्रिवेन्द्रम् पहुँच गये।

अब हमारी ऊपर की ओर, दूसरी ओर से वापसी की यात्रा शुरू हो गई थी। वहाँ दोपहर कटी और रेल द्वारा दूसरी प्रातः हम अरुणाकलम् पहुँचे और वहाँ से मध्यान्ह को गाड़ी पकड़ रात को ही हम कोयम्बटूर पहुँच गये। रात हो गयी थी, एक होटल में स्थान मिला। भूख जोरों की लग रही थी। अतः हम ढूँढ़–ढ़ाँढ़ कर एक मारवाड़ी भोजनालय में पहुँचे। सारे दक्षिण भारत में यह पहला भोजनालय था जिसमें हमने स्वेच्छा से पेट भर दाल, चपाती खाई। अन्यथा तेल का बना वह डोसा, इडली शाम तक छाती से नीचे नहीं जाता था। आज लगा कि अमृत पाया है खाने में। यह भी एक राम कृपा ही थी कि हमने उसकी प्रेरणा से चलते समय कुछ खाद्य सामग्री साथ रख ली थी। नाश्ता तो कभी ही बाहर किया होगा, बल्कि भोजन भी जहाँ सुविधा होती, आप बना लेते अन्यथा बहुत कठिनाई होती। यह मारवाड़ी भोजनालय है बड़ा शुद्ध, स्वच्छ, मालिक बड़ा सज्जन। आज 19 तारीख है। आज ही दोपहर तक हमें ऊटी पहुँच जाना है। यह दक्षिण भारत का एक पर्वतीय प्रदेश है जो इस देश में अपनी मनोरमता के लिए प्रसिद्ध है।

इस छोटी सी यात्रा में एक विशेष घटना घटी। यह अरुणाकुलम् हमारे लिए नया प्रदेश था। कोयम्बटूर के लिए यहाँ से चलना था। सामान एक बरात का था। गाड़ी कम समय रुकेगी। दिल में घबराहट थी,

रात है कैसे होगा? अरुणाकुलम् से उसी गाड़ी में एक सज्जन चढे उसी डिब्बे में। अनेच्छा से वह सज्जन धीरे–धीरे मेरे पास ही आ बैठा और ऐसा लगता था, उसकी बातचीत करने की प्रबल इच्छा हो रही है। किसी बहाने उसने बात करना शुरु किया और धीरे से पास बैठ गया। कुछ पूछताछ के बाद एक छोटी सी नवजात कुतिया को मेरे पास ले आया। कहने लगा आज ही लाया हूँ, आप इसका नामकरण कर दो। निमियाँ नाम रखवा कर उसे स्थान पर छोड़, फिर पास आकर खड़ा हो गया। बात फिर शुरु की। हमारी घबराहट को कम करने के लिए वह बोला, 'मैं कोयम्बटूर में मिलूंगा स्टेशन पर ही, आपका स्थान आरक्षित होगा, आप चिन्ता न करें'। हम निश्चिन्त हो गये। वह मार्ग में उतर गया। जब हम कोयम्बटूर पहुँचे तो रात हो गई थी। उस सज्जन ने स्टेशन पर रिटायरिंग रूम के दो कमरे रिजर्व करवा रखे थे। अपने सुपुत्र के साथ प्लेटफॉर्म पर हमारी प्रतीक्षा में था। झटपट सामान उतरवाया, कुलियों से उठवा, उन कमरों तक हमें आराम से पहुँचा दिया। फिर हमारे साथ एक रेस्टोरेन्ट तक पहुँचाने गया, जहाँ सबसे अच्छा भोजन मिल जाये। बात–बात में माँ–माँ करता वह व्यक्ति किसी प्रेरणा का परिचय दे रहा था? हमें फिर से हमारे स्थान पर छोड़, हाथ जोड़कर खड़ा हो गया जैसे वह हमारा ऋणी हो और प्रातः फिर आने का वचन दे, वहाँ से चला गया। हम सब इस घटना से आश्चर्य में थे, यह कौन है, किसका संकल्प इस पर हावी होकर यह नाटक करवा रहा है। व्यक्ति का स्थूल ही स्थूल आँखों से दीखता है। काम करने वाला भ्रम के परदे के पीछे ही रहता है। कहाँ के हम? कहाँ का वह? क्या वास्ता था उसको हमसे? इतनी लम्बी यात्रा में यही एक स्थान था जहाँ सामने समस्या दीख रही थी। कैसे निराकरण हुआ उसका?

''ना जाने किस वेश में नारायण मिल जाय।''

'साधु गाँठ न बाँधि है उदर समाता लेय

आगे पीछे हरि खड़े जब माँगे तब देय।।''

उस प्रभु के हजारों सिर, पाँव, हाथ हैं, जब जिससे काम लेना चाहे ले ले। वह सब जगह है, जहाँ हृदय से आवाज निकलेगी, वह उपस्थित होगा वहीं।

उस रेलवे स्टेशन के बड़े–बड़े दोनों कमरों में रात आराम से कटी। दूसरी प्रातः वह सज्जन फिर आए, पुत्र तथा पुत्र–वधू को लेकर। हमने उनके साथ क्वालिटी स्वीट्स रेस्टोरेन्ट में नाश्ता किया और वहाँ की सूती प्रसिद्ध साड़ियाँ खरीदने की इच्छा से उनके साथ बाजार गये। खरीदा और वापिस आ गये। वह बच्चा हमें बस स्टैण्ड तक छोड़ने आया, जहाँ से हमें ऊटी के लिये जाना था। वाह रे मालिक तेरी दया।

कोयम्बटूर से हम 2:30 बजे की बस से चलकर 5:30 पर ऊटी पहुँच गये। यह बड़ी ऊँचाई पर बहुत विशाल सुन्दर पर्वतीय प्रदेश है। सम्भवतः ही कोई दूसरा इस दिशा में ऐसा पर्वतीय प्रदेश होगा। मार्ग बड़ा सुन्दर है। दोनों ओर हरा–भरा, बड़ी अच्छी सड़क, हर दृष्टि से मनोरम है यह स्थान। ऊटी से कोई चार–छः मील पहले इसी सड़क पर मिलिट्री का एक बहुत बड़ा नगर है वलिंगटन। यहाँ स्टाफ कॉलेज की परीक्षा देने के लिये चुने हुए ऑफिसर्स को स्थान मिलता है। बड़ा सुन्दर नगर है। ऊँची–ऊँची विशाल इमारतें, खुले मैदान, बच्चों के स्कूल, अस्पताल, तैरने के छोटे–छोटे तालाब, चारों ओर सुन्दरता का नमूना,, भवनों की कतारें, सब कुछ देखते ही बनता है।

ऊटी पहाड़ी प्रदेश ठहरा। हम 7,050 फीट की ऊँचाई पर जा पहुँचे एकदम गरम प्रदेश में से। बस से उतरते ही कंपकंपी होने लगी। धूप जा चुकी थी, सायं समीप थी। एक खुले मैदान में बस का अड्डा है। कुली आ पहुँचे। सामान उतारा पर कहाँ जाना है, अभी तक सोचा ही न था। कुलियों के इंगित पर ही भाई लोग भागे। कुछ ही दूरी पर एक होटल, 'वुडलैंड्स' में तीन कमरे ले लिये गये और हम सब काँपते–काँपते वहाँ पहुँच गये। उन्हीं के भोजनालय में भोजन किया। आज रात काटना एक समस्या हो गई थी। एकदम तापमान में भारी अन्तर। सांए–सांए करती वृक्षों के पत्तों की सरसराहट के साथ तूफान की हवा, नवम्बर मास का अन्तिम सप्ताह, सब मिलकर पर्याप्त समस्या थी। बेचैनी से रात कटी। अपनी नित्यकर्म क्रिया से निवृत्त हो सबने चाय ली। कुछ चैन मिला। तब तक सूर्य नारायण ने आँखें खोलीं।

धूप मिली। कुछ चैन आने लगी। आज की ही रात यहाँ रुकना है इसलिये यहाँ जो कुछ भी दर्शनीय है आज ही देखना है।

पर्यटक बस से हम सब से पहले मैसूर राज्यभवन देखने गये। उसकी निर्माण कला अवर्णनीय है, जैसे ब्रह्मा की सम्पूर्ण कला सकेल कर किसी ने रख दी हो। काष्ट की वह शिल्पकला जिन हृदयों की उपज होगी, कितने सुघड़ वह हृदय होंगे बहुत, बहुत और बहुत ही सुन्दर है। बड़ा विशाल भवन है। फिर हम बड़ौदा भवन गये। यह भी बड़ा ही सुन्दर है, पर पहले की तुलना में बहुत कम।

वहाँ से हम ऊटी प्रदेश की उतंग गिरि शृंग जिसे ऊटी प्रदेश का शीर्ष कहते हैं, वहाँ पहुँचें। वहाँ से उस पहाड़ी प्रदेश का एक भव्य दृश्य दिखाई पड़ता है। 9000 फीट की ऊँचाई पर यह गिरि शृंग है। सांय–सांय करती अति शीतल पहाड़ की वायु, चारों ओर फैला वह प्रदेश, ऐसा मनमोहक लगता है कि बार–बार देखते ही रहने को मन करता है। किन्तु वहाँ देर तक रुकना सम्भव न था।

अतः हम पीछे लौटे। यहाँ भी एक घटना घटी। अभी हम आधा मार्ग भी न उतरे होंगे कि मेरी वाली टैक्सी का आगे का टायर एकाएक फट गया और हमारी टैक्सी पहाड़ के साथ जा टकराई। टकराई क्या उसमें धंस गई और आधा हिस्सा चूर–चूर हो गया। हम उतरे। देखा इस ड्राइवर का उतराई का हाथ, जहाँ रुकी है, जो मोड़ कटा है इसे दूसरी दिशा को सरकना चाहिये था, जहाँ ये वह सीधी एक खड्ड में जा गिरती। कैसे, क्यों यह इधर को मुड़ी? यह हाथ इसके मोड़ का नहीं, किसने यह खेल खेला? वही जाने, मानव क्या सोच सके उसके खेलों को? बस सिर झुका उसकी अनन्त महिमा को देखकर हम पैदल चल पड़े। गिरते–पड़ते उस गाड़ी को वहीं छोड़, थके–मांदे हम बोटेनिकल गार्डन में आ पहुँचे। वहाँ हमारे साथी जो दूसरी टैक्सी से आये थे हमें मिल गये।

उद्यान क्या है, सुषमा का खजाना है। सम्भवतः प्रकृति मैय्या का सौन्दर्य सब यहाँ ही एकत्र करके रख दिया है। ऊँची–नीची सुन्दर लाल सड़कें, रंग–बिरंगे पुष्पों के ढेर, अलग–अलग ढंग से सजे स्थान, वृक्षों की कतारें, सब कुछ ही दर्शनीय है। वहाँ कुछ ऊँचाई पर एक ग्लास–भवन है जो चारों ओर से शीशे का बना है। क्या है यह! जैसे उस सुन्दरम् का ही दर्शन हो। सारी प्रकृति की सज्जा को सकेल कर यहाँ रख दिया हो। पुष्पों के रंग और रखने का ढंग तक अद्‌भुत रचना है। रंग–बिरंगे फूलों की कतारें, रंगों का चुनाव किसी हृदय की कलात्मक भावना का आदर्श है। यह सब कुछ देखने के उपरान्त ऐसा लगता है कि प्रत्येक दृष्टि से यह पहाड़ी प्रदेश सुन्दरता तथा परिधि की दृष्टि से सब पहाड़ी प्रदेशों से उत्तम है। चारों तरफ सुन्दर भवनों का निर्माण है। बीच में एक खुला मैदान है, जिसमें घोड़ों की प्रतियोगिता होती है। खेल का मैदान है। एक ओर सुन्दर सी एक झील है। बड़ा अच्छा बाजार है। स्कूल, कॉलेज, बैंक, अस्पताल सभी कुछ है और बड़ा साफ सुथरा नगर है। यात्रियों के ठहरने के लिए पचासों होटल हैं। सब कुछ बहुत ही सुन्दर है। यह रात भी हमारी वहीं कटी, पर यह रात पिछली रात की तरह एक समस्या न थी। हम कुछ सुलझ गये थे।`

दूसरे दिन 4:30 बजे हम बस द्वारा मैसूर के लिये चल पड़े। ऊटी और मैसूर के बीच का रास्ता वैसा नहीं है जैसा कोयम्बटूर से ऊटी का रास्ता है। यह नितान्त जंगल का रास्ता है। दोनों ओर घना जंगल, दूर–दूर तक कहीं नगर नहीं हैं। शायद ही एक स्थान को छोड़कर सारे रास्ते में कहीं बस रुकी हो। वहीं हमने तथा सब यात्रियों ने रात का खाना खाया और 10:30 बजे हम मैसूर पहुँचे।

इन्द्रा भवन नाम के बस अड्डे के पास ही, बहुत ही अच्छा एक होटल है। वहीं तीन कमरे लेकर हम ठहर गये। सामान खोला, लेट गये, पर कितना अन्तर है तापमान में। यहाँ आते ही पंखे चलाने पड़े। वाह रे रचयिता! धन्य है तेरी लीला।

बड़ा मनोरम स्थान है यह। ऊँची सफेद अट्टालिकायें, ऊपर छोटे–छोटे गुम्बद, बाजार के दोनों ओर बड़ी–बड़ी भव्य इमारतें, विद्युत प्रकाश का घना प्रसार, स्थान–स्थान पर सन्दल वुड की बनी वस्तुओं की बड़ी दुकानें, बड़े–बड़े सुन्दर होटल, जनता भी अपेक्षाकृत बड़ी सुलझी हुई हैं। दूसरे ही दिन हम पर्यटक

बस से मैसूर राज्य के बड़े–बड़े भवन तथा प्रसिद्ध स्थान देखने गये। पहला स्थान जहाँ हमारी बस रुकी वह जगमोहन पैलेस नाम से एक भवन है। यह भवन तैल चित्रों का जैसे नुमाइश घर हो। सुन्दर पूरे कद के चित्र, एक–एक भाव भंगिमा का मूल्य नहीं। सम्भवतः ऐसे भावपूर्ण, कलापूर्ण चित्र जीवन में पहले कभी नहीं देखे। मैसूर में बहुत पहले टीपू सुल्तान का राज्य रहा है। उसी के शासन काल के अनेक भव्य चित्र हैं। राम, कृष्ण, सावित्री–सत्यवान, नल–दमयन्ती के जीवन कथानकों से सम्बन्धित अनेक चित्र हैं। सम्भवतः करोड़ों के मूल्य के ये चित्र हैं।

वहाँ से हम एक महल से पास पहुँचे, जिसे ललिता भवन कहते हैं। ललिता देवी छोटी आयु में ही अपनी जीवन–लीला समाप्त कर गईं। उनकी स्मृति स्वरूप यह भवन है। प्रवेश निषेध है। अतः हमने बाहरी दर्शनों से ही सन्तोष कर लिया। वहाँ से हम एक गिरि शृंग पर पहँचे। इसे चामुण्डा हिल (Hill) कहते हैं। यहाँ चामुण्डा देवी का मन्दिर है। बड़ी सुन्दर हीरों की जगमगाहट में माँ की मान्यतापूर्ण आकृति के दर्शन हैं। ऊपर से नदी के साथ–साथ सारे मैसूर के दर्शन होते हैं। तमिलनाडु की परिधि से निकल कर हमने यह पहले दर्शन किये, जहाँ मन्दिर में विद्युत प्रकाश है। धीरे–धीरे घर पहुँचे।

भोजनोपरान्त दो बजे उसी बस से फिर यात्रा शुरू हुई। पहले हम एक विशाल गिरजाघर में पहुँचे। कैसा शान्त वातावरण स्थापत्य कला का सर्वोत्तम नमूना, बड़े–बड़े गुम्बदों से पूर्ण, अति ऊँची सफेद संगमरमर की छत, नीचे अपूर्व प्रभावित फर्श, स्थान–स्थान पर ईसा पर घटी घटनाओं के हृदय विदारक चित्र, सामने क्रॉस पर लटकी ईसा की भव्य मूर्ति। वातावरण में सब कुछ शान्त रस में भीगा–भीगा एक अद्‌भुत दृश्य है। चार–छः पैड़ी, थोड़ा नीचे उतरकर क्रॉस के नीचे वरजिन मेरी की कलापूर्ण सफेद पत्थर की प्रतिमा लेटी है। सम्भवतः जब मेरी को कैद किया गया था, वहाँ जेल में लेटी मेरी की यह प्रस्तर मूर्ति है। कितनी शान्त, कितनी सौम्य तथा करुणापूर्ण है यह मूर्ति। बस जो कुछ भी है महान ही है इतना ही पर्याप्त है। यहाँ पर जो मैसूर राज्य का भवन है बहुत ही बड़ा है किन्तु वहाँ जाना निषेध है। मैसूर में एक बहुत बड़ी लेक (Lake) है जिसका बाँध मीलों का है। उसी बाँध के नीचे एक उद्यान है जिसे **वृन्दावन गार्डन** कहते हैं, मानो मानव स्वर्ग को भूमि पर उतार लाया हो। उसके दो भाग हैं– मधुवन तथा वृन्दावन। 6:30 बजे इसमें विद्युत दीपों की कतारें जल उठती हैं। लोग साधारणतया इस समय तक वहीं रहते हैं जो इसे देखने जाते हैं। दीपों की जगमगाहट उनकी अनेक विधि सज्जा, उनके शृंगों का विभाजन देखते ही बनता है। बीचोंबीच सड़कों के विभाजन, छोटी–छोटी नदियों सी, उनमें लगे फब्बारे और पानी के चारों ओर बहते झरने, उनमें बनी शिवादि की मूर्तियाँ सब कुछ अलौकिक ही है।

इन सबको देख हम 24 तारीख की प्रातः एक बस द्वारा बंगलौर पहुँचे। बंगलौर में क्वालिटी रेस्टोरेन्ट के मालिक हमारे नातेदार हैं वह पति–पत्नी बस अड्डे पर पहुँचे हुए थे। साथ में एक स्टेशन वैगन थी सामान के लिये। उस समय वर्षा बहुत जोरों पर थी। बेचारे पानी में ही हमारा सामान लदवा टैक्सियों पर हमें बिठा एक होटल में, जिसका नाम वृन्दावन होटल है, पहुँचे। वहाँ स्थान अधिकृत किया और खाना तो आज उन्ही के आतिथ्य में था।

बंगलौर मैसूर राज्य की राजधानी रही है। सुन्दर शहर है। बड़े–बड़े होटल, बाजार, चौड़ी–चौड़ी सड़कें, पुराना घना एक तरफ को बसा शहर। सब कुछ ही सुन्दर है। जनता सभ्य है। तमिलनाडु अथवा आन्ध्रा वाला हाल यहाँ नहीं है। लोग धनीमानी सभ्य लगते हैं।

हमें यहाँ जो आकर्षण खींच लाया है, वह है साई बाबा के दर्शन। यहाँ से 120 मील की दूरी पर **पुट्टावर्ती** नाम से एक स्थान है। वहीं है साई बाबा का **शान्ति निलयम** नाम से एक आश्रम। वहीं जाना है बाबा के दर्शनों के लिये। सो क्वालिटी वाले भाई के द्वारा दो टैक्सियाँ लेकर हम 25 तारीख की प्रातः 5 बजे बंगलौर से पुट्टावर्ती की दिशा में रवाना हुए। यह शान्ति निलयम बाबा के पैत्रिक गांव पुट्टावर्ती के सन्निकट ही है। जैसा सुना था बाबा के दर्शन अति दुर्लभ हैं साधारणतया। मन तो शंकित था ही, देखें गुरुदेव का क्या विधान हो। 23 तारीख को बाबा का जन्म दिवस था। दर्शनार्थियों की भीड़ में दर्शन होंगे

कि नहीं, इसी शंकित मन को लेकर हम चल दिये। बंगलौर पहुँचते ही मैने उसी रात फिर एक शुभ स्वप्न देखा था।

एक मकान है, जिसके एक कमरे में सफेद बिस्तर एक चारपाई पर बिछा है। हमारे दादा गुरु श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज उस पर बैठे हैं। मैंने प्रवेश करते ही उन्हें नमस्कार किया। वह हँसे और खूब हँसे। उसी चारपाई पर बैठने का मुझे संकेत किया। मैं बैठ गई और इतना कहकर कि स्वामी जी मुझे आशीर्वाद दो, मैंने अपना सिर उनकी ममतामयी गोद में रख दिया। उन्होंने झट से, इतना कहते हुए, दोनों हाथ मेरे सिर पर रख दिये– आशीर्वाद, आशीर्वाद।

उस ध्वनि के सुनते ही मुझे रोमांच हो उठा। उन्होंने मुझे भर पेट प्यार दिया। जब मेरी आँख खुली तो मेरा सारा शरीर रोमांचित हो रहा था। दिन भर वह कृपापूर्ण दृश्य आँखों से ओझल नहीं हुआ। आज पुट्टावर्ती के रास्ते चलते–चलते मुझे बार–बार उसी कृपा की स्मृति हो रही थी और मन कहता था, गुरुदेव का आशीर्वाद मिला है। हमें अवश्य दर्शन होंगे।

5 बजे चलकर 120 मील की यात्रा करके हम ठीक 8:45 पर वहाँ पहुँच गये। बहुत विशाल आश्रम है, परिधि की दृष्टि से, किन्तु पहला निर्मित थोड़ा सा है पुराने ढंग का, पर अब नव–निर्माण चल रहा है। समयानुसार कमरे आदि बनाये जा रहे हैं। हजारों की संख्या में लोग जमा थे। कुछ खड़े, कुछ बैठे थे जमीन पर खुले आकाश के नीचे। धूप भी कहीं–कहीं पड़ रही थी। हमें पता चला कि बाबा अभी बाहर आने वाले हैं। कितनी प्रसन्नता हुई होगी हमें यह सुनकर, अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। हम भी बहिनों की दिशा में बढ़कर एक पंक्ति में जा बैठे। भाई भाइयों की ओर बढ़ गये। ठीक नौ बजे बाबा के प्रथम दर्शन हुए बड़े समीप से। दुबले–पतले, नाटे कद के, श्यामवर्ण, लम्बे काषाय चोला पहने एक भव्य मूर्ति ने मुस्कराते हुए उस मैदान में पदार्पण किया। जनता के हाथ जुड़ गये और शीश झुक गये। बाबा के हाथों में एक कण्डिया थी जिसमें विभूति की छोटी–छोटी पुड़ियाँ थीं, जिसे बाबा अपने हाथों से बाँटते, किसी को दो, किसी को चार और आगे बढ़ते गये। कभी बहिनों को देते, कभी भाइयों की ओर बढ़ जाते। भावपूर्ण मुस्कान, मुखारविंद पर चमक, हल्की–हल्की मधुर आवाज से कुछ–कुछ कहते, पूरा घण्टा वहाँ घूमते रहे। हमें भी प्रसाद मिला। जैसे ही दस बजे, बाबा कण्डी वहीं छोड़कर अन्दर चले गये। भाई लोग बिना प्रसाद पाये ही रह गये, किन्तु वहीं बैठे हैं, दूसरे समय की प्रतीक्षा में।

एकाएक पता चला कि 11 से 12 बजे तक सत्संग और कीर्तन है। बाबा वहाँ आएंगे, आप जल्दी भागो, आगे की जगह घेर लो। लोग उठे और उसी दिशा को भाग लिये जहाँ एक शेड के नीचे सत्संग होने वाला था। हम भी भागे। एक बड़े शेड में, जो चारों ओर से खुला है, ऊपर टीन की चादरों की छत है, उसमें एक तरफ रंगमंच सा बना है, उस पर परदे लगे हैं। एक तरफ बाबा के लिये एक सुन्दर सी कुर्सी बिछी है, दूसरी ओर शिरडी साई बाबा की रजत–निर्मित शेषनाग की चौकड़ी को आसन बनाये एक मूर्ति रखी है, जिसके ऊपर नाग के फनों की छत्रछाया है। मंच के दोनों ओर सत्य साई बाबा को बड़े पूरे कद की दो मूर्तियाँ टंगी हैं। पीछे के परदे में एक द्वार है। कोई 11:30 पर उसी द्वार से मुस्कराते हुए बाबा ने प्रवेश किया। लोगों की वहीं आँखें लगी थीं। कीर्तन हो ही रहा था। आते ही बाबा ने ताली बजानी शुरू की। तान देते रहे, सिर हिलाते रहे और उसी मंच पर इधर से उधर घूमते–फिरते रहे। दो–चार लोगों ने चिटें भी दीं। अन्त में 12 बजे एक भाई ने एक सफेद फूलों की माला बाबा के गले में डाल दी। आरती प्रारम्भ हुई और बाबा अदृश्य हो गये।

लोग फिर भागे बाबा के निवास स्थान की ओर। वहाँ जाकर सब खड़े हो गये। उनके निवास स्थान के ऊपर एक गैलरी सी बनी है। बस उसी में बाबा आएंगे, दर्शन फिर होंगे, यही थी लोगों की भागने वाली आशा। हम भी उनमें जा मिले। कुछ ही क्षणों में वहाँ बाबा के दर्शन हुए, हाथ उठा सबको आशीर्वाद दिया और चले गये। अब हम वहाँ से लौटना चाहते थे। रात से पहले बंगलौर पहुँचना है। यही टैक्सी वालों से वचन था, सो हम वहीं बाजार से थोड़ा खा–पी कर चल पड़े और ठीक 5 बजे अपने स्थान पहुँच गये। अब हमें बंगलौर में कोई आकर्षण नहीं। ध्यान अब पीछे पलट रहा है। घर से निकले एक मास सबको

होने वाला है। 26 तारीख को कल ही चलना चाहते हैं किन्तु टिकट 27 तारीख की मिली है। 26 तारीख का दिन यहीं कटेगा। 26 की प्रातः ही वर्षा होने लगी पर शीघ्र ही थम गई। हम सब यहाँ की विधानसभा देखने के लिये चले।

विधानसभा का भवन बहुत ही भव्य निर्माण है और बहुत ही कलात्मक आकर्षण है। स्वभावतः लोग यहाँ सायं 6:30 बजे के लगभग आते हैं और 7:30 बजे तक यहीं रहते हैं क्योंकि यहाँ पर 6:30 पर एक विशेष ढंग से लगाया गया विद्युत प्रकाश प्रकाशित होता है। कैसे, कहाँ इसका प्रसार केन्द्र है दिखाई नहीं देता कहीं। एक गहरे पीतवर्ण के प्रकाश से चारों तरफ चकाचौंध हो जाती है। सारा का सारा भवन आलोकित हो उठता है। सब देखा, रात को घर पहुँचे और 27 तारीख की सायं को हम बम्बई के लिये चल पड़े। यही था हमारी इस पुण्य–यात्रा का अन्तिम स्टेशन। ठाकुर ने अपार कृपा की।

''नाथ सकल साधन मैं हीना।

कीनी कृपा जानि जन दीना।।''

बम्बई में हम श्री आहूजा जी के घर ठहरे थे। एक सप्ताह लगभग वहाँ भी रुकना पड़ा। चार जगह सत्संग का प्रोग्राम रहा। कुछ धन साधना धाम के लिए प्राप्त हुआ और 5 दिसम्बर को यात्रा पूर्ण करके दिल्ली के लिये चल पड़े।

––इतिश्री––